अशोक सिंह

गीत

जाने कैसी हवा चली, कैसी चली ये रीत रे।
ना तो मनके तार खनकते, ना होठों पर गीत रे।
भाग–दौड़ के इस जीवन में,
हर पल हम बेचैन रहे।
सिमट रहा आकाश आस का
प्रेम पियासे नैन रहे।
टूट रहा साँसों का सरगम, बिखर रहा संगीत रे।
जाने कैसी हवा चली, कैसी चली ये रीत रे।
इर्ष्या–द्वेष असत्य की कजरी,
परम्पराएँ फिसल रही।
जहर भरी है गगरी–गगरी,
डगरी–डगरी लहर रही।
मुट्ठी भर छाँव मिले ग्रीष्म में, जीवन जाये बीत रे।
जाने कैसी हवा चली, कैसी चली ये रीत रे।
हाट–बाट में बेच रहा है,
मनुज अस्मिता सौ–सौ बार।
सब कुछ है बेमानी लगता,
दूल्हा डोली और कहार।
जिसके जितने हाथ हैं लम्बे, उसकी उतनी जीत रे।
जाने कैसी हवा चली, कैसी चली ये रीत रे।
धर्म, ईमान, रिश्ते–नाते
सबकी बदल रही परिभाषा।
दीप आस्था के बुझ रहे,
सर्वत्र कुंठा हताश निराशा।
है आदमी आदमी से, आज यहाँ भयभीत रे।
जाने कैसी हवा चली, कैसी चली ये रीत।

छोटी पड़ गई चादर अपनी, लम्बे हो गए पाँव रे।
मुट्ठी भर सुख की खातिर, छोड़ चले सब गाँव रे।
दुःख की गठरी, सुख के सपने,
करने मिट्टी का व्यापार चला।
तोड़ गृहस्थी से नाता सब
छोड़ नदी के पार चला।
आँखें नाविक की भर आई, बिलख रही है नाव रे।
मुट्ठी भर सुख की खातिर, छोड़ चले सब गाँव रे ।
सूना–सूना घर–आँगन,
सूने खेत–खलिहान हुए।
सूनी बगिया, सूना पनघट,
चौराहे के श्मशान हुए।
किससे पुछे राह बटोही, सोचे बरगद छाँव रे।
मुट्ठी भर सुख की खातिर, छोड़ चले सब गाँव रे ।
जिनके हाथ कमान दिये,
वही चलाते वाण यहाँ।
भूख गरीबी बेकारी से,
बेकल हैं मन–प्राण यहाँ।
जीवन के इस महासमर में, विफल हुए सब दांव रे।मुट्ठी भर सुख की खातिर, छोड़ चले सब गाँव रे ।